Anekant Journal of Humanities and Social Sciences
A Half Yearly and Peer Reviewed Open Access Print and Online Journal
http://www.humanitics.org/

RESEARCH ARTICLE **Vol. II, Issue II, August 2019**

Title- जैन दर्शन के नय तत्त्व का समीक्षात्मक विचार

यशवन्त कुमार त्रिवेदी
शोधछात्र,
संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110 067, भारत
yashvanttrivedi123@gmail.com

भारतीय दर्शन में जैन दर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसके अध्ययन के बिना भारतीय दर्शन को समझ पाना अज्ञानता है। इसमें सबसे बडी विशेषता है कि अन्य दर्शनों का विकाश एक दूसरे के मत का खण्डन और अपने मत के मण्डन के क्रम में हुआ, लेकिन जैन दर्शन ने अपने मत को स्थापित करते हुये एक समन्वयात्मक विचारधारा को जन्म दिया, जिसके कारण समस्त दर्शनों में एक समन्वय की भावना का उदय हुआ। जैन दर्शन ने अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का अन्वेषण किया- जैसे स्याद्वाद, नयवाद, पुद्गलवाद, स्कन्धवाद, जगत् नित्यत्ववाद, पर्यायवाद, समुद्घातवाद्, और जीववाद इत्यादि।

जैन दर्शन में सात तत्त्व हैं- जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।[1] इन सातों तत्वों का ज्ञान चार प्रकार के निक्षेप- नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव,[2] इन्हीं के द्वारा वस्तु को समझा जा सकता है। इन सात तत्त्वों का ज्ञान किस कारण से होगा जिससे कि इन तत्वों का सम्यग्ज्ञान हो? इस जिज्ञासा के समाधान के लिये तत्वार्थसूत्रकार उमास्वाति ने प्रथम अध्याय के आठवें सूत्र में कहा कि प्रमाण और

[1] "जीवाऽजीवास्त्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षस्तत्त्वम्।" १.४ *तत्वार्थसूत्र*

[2] "नामस्थापनाद्रव्यभावस्तन्न्यास:।" १.५ *तत्वार्थसूत्र*

नय के द्वारा ही वस्तु का बोध सम्भव है।[3] इन दो कारणों में से प्रथम कारण प्रमाण है, तत्त्वार्थसूत्रकार के समय जैन दर्शन में प्रमाण शब्द ज्ञान का वाचक था, किन्तु वर्तमान समय में प्रमाण शब्द ज्ञान के कारण अथवा करण का बोधक है और प्रमा शब्द ज्ञान का वाचक है। यहां नय को प्रमाण से अतिरिक्त समझने के लिये प्रमाण के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है इसलिये प्रमाण के स्वरूपज्ञान के लिये पांच भेदों को बताते है- मति, श्रुत, अवधि, मन: पर्याय और केवलज्ञान।[4] इन पांच में से पहले के जो दो है वो इन्द्रिय के माध्यम से आत्मा को बोध होने के कारण परोक्ष ज्ञान है और अन्तिम तीन इन्द्रिय निरपेक्ष होकर साक्षात् चेतन को बोध होने के कारण यह प्रत्यक्ष ज्ञान है। मति का स्वरूप बताते है कि स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनीबोध ये सब मति के ही पर्यायवाची कहे गये है। यह मति ज्ञान यदि इन्द्रिय के द्वारा उत्पन्न होता है तब सेन्द्रिय ज्ञान है और यदि मन के द्वारा हो रहा है तो अनीन्द्रिय ज्ञान है।[5] श्रुत ज्ञान स्मृतिपूर्वक होता है, जिसके द्रव्यश्रुत और भावश्रुत के भेद से दो भेद है।

यशोविजय सूरि विरचित तर्कभाषा में परोक्ष ज्ञान के पांच भेद उपलब्ध होते है- स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।[6] अनुभव मात्र के द्वारा उत्पन्न ज्ञान को स्मरण कहते है, जैसे तीर्थंकर के बिम्ब का स्मरण, ऐसे स्मरण को प्रमाण माना जाता है क्योंकि अतीत वस्तु में वर्तमान ज्ञान अप्रमाणिक नही होते हैं। स्मृति का कारण तिर्यगुर्ध्वादिसामान्यविषयक सङ्कलनात्मक अनुभवज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते है, जैसे यह वही पुस्तक है। समस्त देश और समस्त काल को लेकर जो साध्य साधनादिविषयक ऊह को तर्क कहते है। जैसे जो जो भी धूम वाला है वह वह सब वह्निवाले भी है। अनुमान का लक्षण करते है कि साधन के द्वारा साध्य का ज्ञान ही अनुमान है। आगम प्रमाण जैन दर्शन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, आगम का लक्षण करते है कि आप्त के वचनों से आविर्भूत अर्थों का संवेदन ही आगम कहलाता है।

इस प्रकार परोक्ष प्रमाण के निरूपण के अनन्तर प्रत्यक्ष का निरूपण उमा स्वाति करते है कि इन्द्रिय के सहायता के बिना ही अतीत, अनागत और वर्तमान विषयों का ज्ञान अवधिज्ञान, मन:पर्याय और केवल ज्ञान से होता है, जो कि क्रमश: उत्कृष्टतम होते जाते है। अवधि ज्ञान में एक सीमित क्षेत्र, और सीमित समय में इन्द्रियों के सहायता के बिना ज्ञान होता है। मन:पर्याय में मन मात्र के द्वारा साक्षात्कार हो जाता है, जैसे जिसमें कोई अवधि इत्यादि न हो, जो भी मन में आ जाये उसका प्रत्यक्ष होता है। तृतीय केवलज्ञान में निखिल द्रव्य पर्याय का साक्षात्कार इन्द्रियों के बिना होता है, यह सिद्ध और

---

[3] "प्रमाणनयैरधिगम:।" १.६ *तत्वार्थसूत्र*

[4] "मतिश्रुतावधिमन: पर्यायकेवलानि ज्ञानम्" १.९ *तत्वार्थसूत्र*

[5] "तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्।" १.१४ *तत्वार्थसूत्र*

[6] "तच्च स्मरण-प्रत्यभिज्ञान-तर्काऽनुमानाऽगमभेदत: पञ्चप्रकारम्।" *तर्कभाषा*, पृ.स. ८

तीर्थंकरों में होता है। इस प्रकार से प्रमाण के भेदों को बताने के बाद, तत्वों के द्वितीय अधिगम उपाय "नय" है, जिसका लक्षण तर्कभाषा में कहते है कि प्रमाण से परिच्छिन्न अनन्त धर्मात्मक वस्तु का एकदेशग्राहि और तदितर अंश का अप्रतिक्षेपि अध्यवसाय विशेष को ही नय कहते है,[7] अर्थात जो वस्तु के सम्पूर्ण स्वरूप को बताये वह प्रमाण है और उसके एक अंश को जो बताये उसको नय कहते है, यह प्रमाण के एक देश होने के कारण यह प्रमाण से भिन्न भी नही है, जैसे समुद्र का एक देश समुन्द्र नही होता किन्तु समुन्द्र से भिन्न भी नही होता है, उसी प्रकार से "नय" प्रमाण भी नही है और अप्रमाण भी नही है। इसको अन्य भाषा में भी समझ सकते है जैसे एक ही वस्तु को लोग अपने अपने विचार और मतानुसार अनेक तरह से प्रतिपादन करते है और कहीं कही विषय के अत्यन्त संक्षेप होने के कारण भी विचारों को समझ पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है, अत: उन विषयों का संक्षेप और अतिविस्तृत मार्ग का परित्याग कर के मध्यम मार्ग में प्रतिपादन करना ही "नय" का प्रतिपादन है। नय का एक और अर्थ है विचारों कि मीमांसा। सुखलाल संघवी जी ने इस नय की परिभाषा करते है कि "परस्पर विरूद्ध दिखाई देने वाले विचारों के वास्तविक अविरोध के बीज की गवेषणा कर के उन विचारों का समन्वय करने वाला शास्त्र" जैसे आत्मा को लेकर विभिन्न दर्शनों में नित्य, अनित्य, ज्ञानरूप, ज्ञानाधिकरण, ज्ञान स्वरूप, कर्ता, अकर्ता, भोक्ता, अभोक्ता, एक और अनेक इत्यादि अनेक परस्पर विरूद्ध बातें दिखाई देते है, इन सब विरूद्ध बातों के मध्य के मध्यम मार्ग को जो इन परस्पर विरुद्ध बातों के बीच में समन्वय स्थापित करे उसको ही नय कहते है।

यहां एक प्रश्न होता है कि प्रमाण के चर्चा समय में ही नय का निरूपण किया गया, और नय के भी विचारात्मक होने के कारण इसका अन्तर्भाव श्रुत प्रमाण में होने के कारण पृथक्तया करना व्यर्थ है, तो इसका उत्तर यह है कि विचारणीय विषय का यदि सर्वांश को लेकर विचार करे तो यह श्रुत प्रमाण होता है और यदि किसी एक अंश को लेकर विचार किया जाये तब यह विचार नय होता है, यह मौलिक भेद श्रुत और नय में है।

इस नय के भेद के विषय में बहुत ही विप्रतिपत्ति है, श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार नय के पांच भेद है- नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द।[8] सिद्धसेन दिवाकर के मतानुसार नैगम के अतिरिक्त छहों भेदों को वो स्वीकार करते है। किन्तु दिगम्बर परम्परा के पाठों में समभिरूढ, और भूतनय ये दो और नयों का भी उल्लेख होता है।[9] तर्कभाषा में नय के दो भेद दिखाई देते है- द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक

[7] "प्रमाणपरिच्छिन्नस्यानन्तधर्मात्मकस्य वस्तुन एकदेशग्राहिणस्तदितरांशाप्रतिक्षेपिणोऽध्यवसाय-विशेषा नया।" *तर्कभाषा*, पृ.स. २१

[8] "नैगमसंग्रहव्यवहारर्जूसूत्रशब्दा: नया:।" १.३४ *तत्वार्थसूत्र*

[9] "नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नया:।"१.३३ *तत्वार्थसूत्र*

के भेद से, प्राधान्य रूप से जिस विचार के विषय में द्रव्य मात्र का ग्रहण करे उसको द्रव्यार्थिक और जो प्रधान रूप से पर्याय मात्र का ग्रहण करे उसको पर्यायार्थिक नय कहते है। द्रव्यार्थिक के तीन भेद है और पर्यायार्थिक चार भेद है, इस प्रकार से इनके अनुसार भी नय के सात भेद होते है। द्रव्यार्थिक में प्रारम्भ के तीन आते है, ऐसा भेद करने का प्रयोजन यह है कि ये तीनों अन्य चार के अपेक्षा स्थुल है और बाकी चार नय पर्यायार्थिक सूक्ष्म है, उनमें विशेष तत्त्व और उसका विचार भी ज्यादा स्पष्ट है। वस्तुत: सामान्य और विशेष रूप से विभाजन एक ही वस्तु के अविभाज्य पहलु है, इसलिये सर्वथैव एक नय के विषय को दूसरे नय के विषय से सर्वथा भिन्न भिन्न नही कर सकते है।

नैगमनय के भी दो भेद दिखाई देते है देशपरिक्षेपी नैगम और सर्वपरिक्षेपी नैगम, देशपरिक्षेपी का लक्षण तर्कभाषा में मिलता है कि सामान्यबोधक नाम से जब एकाध घट के समान अर्थवस्तु ही विचार में ग्रहण किया जाये तब यह देशपरिक्षेपी नैगम कहलाता है।[10] जैसे जो वर्तमान किसी देश का राजा भविष्य में होने वाला है फिर भी उसको आज ही उस देश का राजा मगधनरेश इत्यादि बोला जाता है।

सर्वपरिक्षेपी नैगम में जब नाम से विवक्षित होने वाले अर्थ की सम्पूर्ण जाति को ग्रहण करके विचार किया जाये तब यह विचार सर्वपरिक्षेपी कहा जाता है, जैसे भारत और पाकिस्तान के सैनिकों के मध्य लडाई होती है तो उसको भारत और पाकिस्तान लडते है, ऐसा कहा जाना ही सर्वपरिक्षेपी नैगम कहा जाता है। यह नैगम लोकरूढि आरोप पर आश्रित होती है और सामान्यरूप तत्वाश्रयी होता है।

संग्रह नय के नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि यहां अनेक तत्वों के समूह में विचार कर कुछ कहा जाता है तब यह संग्रहनय है जैसे चेतन से संयुक्त अनेक जड तत्वों का सामान्य रूप से सत् व्यवहार रहता है, ऐसा विचार कर के यदि जगत को सत् रूप कहा जाये क्योंकि सत्ता से रहित कोई तत्त्व नही है तो यह संग्रह नय है। इसका लक्षण तर्कभाषा में कहा गया है कि सामान्य स्वरूप से ग्रहण करने वाली परामर्श को संग्रह कहते है।[11] इसके दो भेद बताये गये है पर और अपर, पर का लक्षण उपर बता दिया गया है, अपर संग्रह नय का लक्षण बताते है कि द्रव्यत्वादि के अवान्तर भेदों में सामान्यरूप से व्यवहार करते है तो यह अपर संग्रह नय होता है। यह जितने छोटे सामान्य को लेकर उनमें सामान्यत्व का व्यवहार होगा तब यह संक्षिप्त संग्रह नय कहा जायेगा।

व्यवहार नय का लक्षण तर्कभाषाकार करते है कि अनेक वस्तुओं को एक रूप में संकलित करने के अनन्तर जब उनका विशेष रूप में ज्ञान अर्थात् व्यवहार में प्रयोग करने का प्रसंग होने पर विशेष रूप से उनके भेद को करते हुये पृथक्करण करना ही व्यवहार नय होता है।[12] जैसे बर्तन कहने मात्र से

[10] "सामान्यविशेषाद्यनेकधर्मोपनयनपरोऽध्यवसायो नैगम।" पृ.स. २१ *तर्कभाषा*

[11] "सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः" पृ.स.२२ *तर्कभाषा*

[12] "संग्रहेण गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभि सन्धिना क्रियते स व्यवहार:।" पृ.स.२२

अनेक प्रकार के थाली और गिलास इत्यादि के बर्तन का ज्ञान होता है, अत: यहां पर विशेष रूप से नामोल्लेख किये बिना गिलास का बर्तन स्वभाव नही जान सकते, अत: गिलास का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे ही सद्रूप वस्तु भी दो प्रकार से होती है जड और चेतन, चेतन भी संसारी और मुक्त दो प्रकार का है, इस प्रकार का पृथक्करण को ही व्यवहारनय कहते है।

ऋजुसूत्र नय का लक्षण तर्कभाषा में प्राप्त होता है कि वर्तमान काल में स्थित पर्याय को ही प्रधानतया सत्य और अविकारी ऐसा विचार करना,[13] इसके पीछे तर्क देते है कि भूत और भावी पदार्थ वर्तमान में साधक नही होने से शून्यवत् है, वर्तमान समृद्धि ही सुख का साधन होने से समृद्धि कही जा सकती है। इसी तरह जो पुत्र वर्तमान में विद्यमान हो और वह सेवा करता है तो पूत्र है, किन्तु जो पुत्र अतीत हो अथवा उत्पन्न लेने वाला हो वह पुत्र ही नही, ऐसा विचार ही ऋजुसूत्र नय कहलाता है।

शब्द नय का लक्षण तर्कभाषाकार करते है कि एक ही शब्द के अनेक काल में अनेक अर्थ होते है, अत: काल के भेद से शब्द के होने वाले अर्थ भेद भी शब्द नय कहलाता है।[14] यहां काल शब्द कारक, लिङ्ग, संख्या, पुरूष और उपसर्ग आदि का भी उपलक्षक है, अर्थात् जो शब्द कहते है वैसा ही मान लेना शब्द नय है। जैसे "वैशाली नाम कि नगरी थी" वैशाली यदि भूतकाल में था, किन्तु वर्तमान में नही है लेकिन लेखक के काल में होने से "था" का प्रयोग क्यों किया, इसका उत्तर शब्द नय से गृहीत होता कि वर्तमान में विद्यमान वैशाली से भूतकाल का वैशाली तो भिन्न ही है और उसी का वर्णन होने से "था" का प्रयोग किया गया। इसी प्रकार से लिङ्गभेद आदि से भी अर्थभेद का उदाहरण समझना चाहिये।

समभिरूढनय का लक्षण तर्कभाषाकार करते है कि पर्याय शब्दों में निरुक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति के भेद से भिन्न अर्थ का आरोहण करना ही समभिनय कहलाता है।[15] अर्थात् एक ही शब्द के व्युत्पत्ति के भेद होने के कारण अनेक अर्थ का ग्रहण करना ही समभिनय है। जैसे "पंकज" शब्द व्युत्पत्ति के द्वारा अर्थ लब्ध कीचड में उत्पन्न होने वाला ऐसा लगता है, किन्तु कीचड में उत्पन्न होने वाले बहुतों पदार्थों को पंकज नही कहते अपितु कमल को ही पंकज कहते है, क्योंकि लोक में पंकज शब्द कमल अर्थ में रूढ है। इसकी एक और व्याख्या होती है कि एक ही अर्थ के अनेक शब्दों के द्वारा कथन करना भी समभिरूढनय कहलाता है, जैसे राजा के ही नृपति, भूपति, महिपति इत्यादि शब्द बोधक है।

तर्कभाषा

[13] "ऋजु वर्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रं प्राधान्यत: सूचयन्नभिप्राय ऋजुसूत्र:।" पृ.स.२२ *तर्कभाषा*

[14] "कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपाद्यमान: शब्द।" पृ.स.२२ *तर्कभाषा*

[15] "पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढ:।" पृ.स.२२ *तर्कभाषा*

शब्दों के अपने प्रवृति निवृत्ति उनके क्रिया से आविष्ट अर्थ को ही वाच्य मान कर ही बोध कराये उसको एवंभूत नय कहा जाता है।[16] जैसे कोइ मनुष्य जब राजदण्ड को धारण करके राजचिह्नों से सुशोभित होता है तब उसको राजा कहा जाता है, जब वह वैद्य के पास जाता है तब उसको मरीज कहा जाता है, जब घोडे पर बैठते है तब उसको घुङसवार कहते है और लडाई में मर जाने पर शहीद कहा जाता है। इस प्रकार से एक ही वस्तु अपने अपने क्रिया के भेद के कारण अनेक अनेक शब्दों से वाच्य होता है, इसको एवंभूत नय कहते है।

सुखलाल जी ने अपने व्याख्यान में कहा है कि यहां पूर्व पूर्व नय के अपेक्षा उतरोत्तर नय सूक्ष्म और सुक्ष्मतर होते जाते है, जिसके कारण उत्तर उत्तर नय का विषय पूर्व पूर्व नय के विषय पर ही अवलम्बित रहता है। इन चारों नय का मूल पर्यायार्थिक नय ही है। यह बात इसलिये कही गई है कि ऋजुसूत्र केवल वर्तमान को ही ग्रहण करती है भूत और भविष्य का नही।

तर्कभाषाकार कहते है कि इनमें से पहले के चार प्राधान्यतया अर्थ को विषय करने के कारण इनको अर्थ नय कहा जाता है, अन्तिम तीन में प्राधान्यतया शब्द को विषय करने के कारण शब्द नय कहते है।[17] ये नय वाक्य भी विधिप्रतिषेध के द्वारा सप्तभङ्गीनय को प्राप्त करते है।

कुछ नयाभास भी होते है अर्थात् नय है नही लेकिन नय के जैसे लगते है उनको नयाभास कहते है।[18] इसी प्रकार से नैगमनयाभास, संग्रहनयाभास, व्यवहारनयाभास, ऋजुसूत्रनयाभास, शब्दनयाभास, समभिरूढनयाभास और अर्थनयाभास इस प्रकार से नयाभास का भी निरूपण किया गया।

****

[16] "शब्दानां स्वप्रवृतिनिमित्तभूतक्रियाविष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवम्भूतः।" पृ.स.२३ *तर्कभाषा*

[17] "एतेष्वाद्याश्चत्वार: प्राधान्येनार्थगोचरत्वादर्थनया: अन्त्यास्तु त्रय: प्राधान्येन शब्दगोचरत्वाच्छब्दनया:।" पृ.स. २३ *तर्कभाषा*

[18] "तत्र द्रव्यमात्रग्राही पर्यायप्रतिक्षेपी द्रव्यार्थिकाभास:। पर्यायमात्रग्राही द्रव्यप्रतिक्षेपी द्रव्यर्थिकाभास:। पर्यायमात्रग्राही द्रव्यप्रतिक्षेपी पर्यायार्थिकाभास:।" पृ.स.२४ *तर्कभाषा*

सन्दर्भग्रन्थसूचि

तर्कभाषा. यशोविजय. सम्पा. पण्डित सुखलाल जी संघवी. अहमदाबाद. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १९३८

तत्वार्थसूत्र. उमास्वाति. (पण्डित सुखलाल जी संघवी विरचित विवेचना सहित) वाराणसी. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, १९७६.